तृतीय अध्याय

"विवेच्य उपन्यासों में प्रधान चरित्र : तुलनात्मक मूल्यांकन"

तृतीय अध्याय

''विवेच्य उपन्यासों के प्रधान चरित्र : तुलनात्मक मूल्यांकन''

❑ प्रास्तविक :-

उपन्यास मनुष्य जीवन की गाथा है अत: उपन्यास में चरित्र चित्रण का स्थान असाधारण है। 'चरित्रप्रधान' उपन्यास मानव जीवन के पूर्ण प्रतिबिम्ब होते हैं। उनमें मानव जीवन की संपूर्ण सबलताओं और दुर्बलताओं को क्रमपूर्वक विकसित होते हुए प्रदर्शित किया जाता है। उपन्यास समाज, देश तथा जाति की चरित्रिक विशेषताओं का प्रदर्शन करते हैं। ''वास्तव में उपन्यास का मुख्य विषय मानव उसका चरित्र है। मानव एक पहेली है, दूसरों के लिए नहीं अपने लिए भी उस पहेली को सुलझाने की उस रहस्य को खोलने की सायास या अनायास चेष्टा प्रत्येक उपन्यास में मिलती है। इस दृष्टि से पात्र और उनका चरित्र चित्रण उपन्यास का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्व बन जाता है।''[1] अत: कहना सही होगा कि उपन्यास में चरित्र-चित्रण जितना स्पष्ट, गहरा विकासपूर्ण होगा उतना ही पाठकों पर उसका असर होगा।

3.1 'सूत्रधार' के भिखारी ठाकुर :-

'सूत्रधार' की शक्ल में उतरे भिखारी ठाकुर भोजपुरी समाज में रचे बसे लोकराग और लोकचेतना को ही व्यक्त नहीं करते बल्कि उसे उद्दीप्त भी करते हैं। उनके इस लोकचेतना में गहरे मूल्यबोध हैं जो उनके ही समाज को नहीं बल्कि हमारे पूरे समाज में जो भी बहुविध विड़ंबनाएँ हैं उनको सामने लाती हैं।

3.1.1 स्वाभिमानी व्यक्ति :-

'सूत्रधार' के भिखारी ठाकुर जाति से 'नाई' हैं। सदियों से पददलित इस वर्ग को हमेशा से उसी हीनता की दृष्टि से देखा गया। बचपन से अवहेलित दृष्टि की आदत भिखारी को थी। उसी में उभरते भिखारी ठाकुर के स्वाभिमानी व्यक्तित्व की झलक हमें उपन्यास में दिखाई देती है।

---

1. गोविंद त्रिगुणायत : साहित्य समीक्षा के सिद्धांत, पृष्ठ - 419

रामानन्द सिंह के साथ 'झांकी' में हिस्सा लेते-लेते भिखारी के मन में इस कला के प्रति गहरी रुचि और खिंचाव निर्माण होता गया। जब रामानन्द सिंह उन्हें अंगरहित यादव की गिरोह में शामिल होने की बात करते है तो वे वहाँ जाकर यादवजी से प्रार्थना भी करते है लेकिन जांति के 'नाई' भिखारी को यादव जी शामिल करने से इन्कार कर देते है। बाद में रामानन्द सिंहजी जब स्वयं जाकर भिखारी को गिरोह मे शामिल करने की अपील करते है तो भिखारी को गिरोह में शामिल किया जाता है। गिरोह के नाच में जो अश्लीलता और श्रृंगारिकता का वातावरण था उसमें भिखारी का दम घुटने लगा। अपने मन में हमेशा से 'व्यास' बनने का सपना देखनेवाले भिखारी इस सबसे अलग कुछ चाहते थे। वही पर उनके स्वाभिमानी व्यक्तित्व की झलक दिखाई देती है। भिखारी उस गिरोह से बाहर निकल आते हैं और खुद का दल बनवाने की तैयारी में लग जाते हैं।

भिखारी को हर बार निम्न जाति का कहकर अपमानित किया जाता है। एक निम्न जाति में जन्म लेने की पीड़ा भिखारी ठाकुर को बार-बार सताती रहती है। जितना ही वे अपनी कला के भीतर पैठते है और इस क्रम में ऊँचाई पाते जाते हैं, दंभ उतना ही तीव्र होता जाता है। उपन्यास में उनके स्वाभिमानी व्यक्तित्व की झलक स्थान-स्थान पर दिखाई देती है।

3.1.2 लोकसंस्कृति, लोकपरंपराओं का समर्थक :-

भोजपुरी गीत संगीत और लोकनाट्य के अनूठे 'सूत्रधार' भिखारी ठाकुर ने भोजपुरी समाज के लोकराग को अपने अभिनय और प्रदर्शन के द्वारा प्रस्तुत किया। 'झाँकी' करते-करते भिखारी के मन में इस लोकसंस्कृति के प्रति गहरी रुचि उत्पन्न हुई। इसी कारण अस्थायी से कुछ स्थायी करने का विचार उनके मन में आया और इसी से आगे उनका अपना 'दल' बन गया।

अपने नाच को अधिक से अधिक सुंदर बनाने के लिए भिखारी ठाकुर ने समाज के लोकपरंपराओं, लोकसंस्कृति से जुड़े विविध जनजातियों की कलाओं को परखा। सिर्फ नाच गिरोह के नाच ही नहीं तो विविध जनजातियों के नाच। धोबिया नाच, गोंड

नाच, अहीरनाच, चमार, धारू, कुम्हार, नेटुआ जट-जाटिन आदि के नाच को देखकर उसका अभ्यास किया। इस हर नाच और संस्कृति की अपनी-अपनी कुछ अलग पहचान और खासियत थी। हर नाच के इस अलग खासियत को चुनकर उसे अपने नाच में शामिल कर दिया जैसे 'अहीर' के नाच में बाँसुरी, ताशा, नगाड़ा आदि का प्रयोग होता था तो उसका प्रयोग भिखारी ठाकुर ने अपने नाच में किया। इस प्रकार लोकसंस्कृति का पुरस्कार अपने प्रदर्शन में ठाकुर ने किया।

भिखारी ने ग्रामीण इलाखे में घर की औरतें जो 'डोमकच' नामक अभिनय करती इसका भी प्रयोग किया। अपने साहित्य के द्वारा इस 'डोमकच' के विविध पहलूओंपर प्रकाश डाला। साथ में फगुआ खेलते समय, दीवाली के त्यौहार में औरतें किस प्रकार अपने रिवाजों को निभाती हैं इसका वर्णन भी किया। भाईदूज के त्यौंहार में किस तरह औरतें अपने भाइयों को विविध गीतों के माध्यम से आशीर्वचन देती हैं इसका वर्णन भी किया है।

भिखारी ने ऐतिहासिक, पौराणिक नाटकों का प्रदर्शन किया जिससे अपनी संस्कृति की पहचान बनी रहें।

3.1.3 सामाजिक परिवर्तन के साथ समता के लिए प्रयत्नशील :-

जीवन के आखरी दिनों में स्मृतियों के बड़े से बवंडर में उलझे भिखारी मन की सारी स्मृतियों को याद करते हैं। बचपन से अवहेलित जीवन रहा। उनके आस-पास मंडरानेवाले ये साये कितने भयानक लगते है। तब वही कुतिया याद आती है जो बाढ़ के पानी में अपने आपको बचाने का प्रयास करती है लेकिन पीछे से कुछ लड़के उस कुतिया को ढेले से मारते हैं। भिखारी के मन में तब एक चित्र जम जाता है कि, यह कुतिया याने वह 'स्वयं' है और पीछे से ढेले मारनेवाले लड़के याने यह 'समाज' क्योंकि इस समाज ने हमेशा से निम्न जाति को अपमानित किया और ऐसे समाज के समाजपरिवर्तन की आकांक्षा भिखारी करते हैं।

अपने नाच प्रदर्शन के द्वारा भिखारी यह परिवर्तन लाना चाहते थे। इस परिवर्तन की आकांक्षा से उन्होंने 'बेटी वियोग' की रचना की। 'अनमेल विवाह' पर

आधारित 'बेटी वियोग' सामाजिक समस्या का ही रूप था। बहुत बड़े पैमाने में बिहार, यु.पी., मध्य प्रदेश आदि प्रदेशों में लड़कियों की शादी गरीबी के कारण और धन की लालसा के कारण बूढ़े वरों से कर दी जाती। यह समस्या अपना विकराल रूप ले चुकी थी। ऐसे में 70 वर्ष के बूढ़े से 10-15 वर्ष की लड़कियों का ब्याह करा दिया जाता। इसका मर्म भिखारी ने जाना था और इसी से साकार हुआ 'बेटी वियोग'। प्रदर्शन के बाद नतीजा यह हुआ कि, एक क्रांति की आग समाज में फैल गई। ऐसे विवाह में बेटियाँ भर मंडप से भाग जाती या फिर आत्महत्या कर लेती लेकिन बूढ़े वर से ब्याह करने से इन्कार कर देती। समाज के उच्चवर्ग से इस 'बेटी वियोग' के प्रदर्शन को विरोध होने लगा। इस बात की तरफ भिखारी ठाकुर ने ध्यान नहीं दियां और 'बेटी वियोग' का प्रदर्शन सफल होता रहा।

कुतुबपुर में एक ही कुआँ था। ऐसे में वहाँ पर भी वर्णभेद था। कुएँ पर सबसे पहले बाबाजी लोग पानी भरते फिर बाबू साहब और फिर वे जातियाँ जिनका छुआ चलता था। तब सबसे अंत में बारी आती अस्पृश्यों की ऐसे में दिनभर भी अगर एक गगरी के लिए खड़े रहें तो भी वह एक गगरी पानी भी बड़ी मुश्किल से मिल पाता। ऐसे में जब मनतुरवादेवी की 'हैजे' के कारण मौत होती है तो भिखारी ऐसे में तिलमिला जाते है। सामाजिक इस जांति-भेद के कारण न जाने कितने ही मौते हो गई होगी। इसी कारण भिखारी ठाकुर अपना कुआँ खुदवाते हैं जिससे गाँव के सभी दलितों शोषितों को जब चाहे, जितना चाहे पानी मिल जाया करें।

सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा भिखारी ने अपने काव्य 'चौबरन पदवी' में भी किया। जैसे वह कहते हैं, "प्रथम शुद्र, द्वितीय वैश, तृतीय क्षत्री हाथ, चौथे ब्राह्मण बकत मुख, सदा रहत एक साथ। भिखारी का मानना था कि, असली आजादी तो यही होंगी जहाँ पर यह दुनिया बदलेंगी, जांति-पांति की घृणा बन्द होगी।"[1] यहीं पर भिखारी ठाकुर की सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा, समाजसुधार की चिंता आदि बातें उजागर हो जाती है। अपनी इसी आकांक्षा को वे अपने नाच प्रदर्शन के द्वारा जन-जन में फैलाते रहें। आगे 'नाई बहार', 'पिया निसइल' जैसे नाटकों के प्रदर्शन के द्वारा उन्होंने शराब का विरोध, ताड़ी का विरोध दिखलाया।

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ - 290-291

सामाजिक परिवर्तन के लिए भिखारी ठाकुर ने उम्रभर कोशिश की। यह एक ऐसा लोक कलाकर था जिसने जन सामान्य के हृदय पर राज किया। उसकी एक झाँकी देखने के लिए लाखों की भीड़ जुट जाती थी। उसके एक प्रदर्शन पर पूरा का पूरा समाज 'बेटी न बेचने' की कसम खाता है। ऐसा भिखारी ठाकुर जो आंतरिक व्याकुलता के साथ लोगों के सामने प्रस्तुत हो जाता। भिखारी से बड़ा 'भिखारी' का नाम था। लोगों को आकाशवाणी के सूचना के लिए, सूचना एवं संपर्क विभाग को परिवार नियोजन के प्रचार के लिए, सामाजिक जागृति के लिए भिखारी ठाकुर चाहिए थे क्योंकि जिनके कहने पर लाखों की भीड़ इन बदलावों को अत्यंत सहजता के साथ मान्य कर लेती थी। ऐसा यह सामाजिक परिवर्तन के लिए आकांक्षी एक लोक कलाकार था।

3.1.4 संवेदनशील कवि, लेखक :-

''भिखारी ठाकुर कोई साधारण या सामान्य लोक कलाकार नहीं थे, महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन ने उन्हें 'भोजपुरी का शेक्सपीयर' कहा था, कथन में अतिशयोक्ति हो सकती है भी पर सच्चाई यह भी है कि बीसवीं सदी के भोजपुरी समाज के विभिन्न अनुभवों को अकेले जिस कलाकार ने सबसे अधिक प्रभावित किया वे भिखारी ठाकुर ही थे।''[1] उपर्युक्त कथन से भिखारी के एक लोक कलाकार कवि और लेखक होने की बात स्पष्ट होती है।

अनपढ़ भिखारी के पढ़ाई की सारी जमापूंजी जोड़कर बाबू हरिनंदन सिंह ने मंत्र लिखवाया, ''रामगति देहू सुमति।'' और इस प्रकार पढ़ाई की आकांक्षा जाग गई और भगवान सांहु से पढ़ना आरंभ कर दिया। फिर अक्षर-अक्षर जोड़कर 'शब्द' बनते गए। फिर 'रामलीला' के संवाद बनाते-बनाते भिखारी ठाकुर गाभिन गाय की पीड़ा से गुजरते रहे। धोबी-धोबिन के नाच से प्रेरणा ग्रहण कर ली और लिखना आरंभ किया।

''श्री गुर चरण कमल सिर धरि कर तब गाव-अ विरहा के गीत ...।''[2]

इस समाज के व्यथाओं के साथ भिखारी ठाकुर का लिखना आरंभ हुआ। उसके बाद एक

---

1. रवींद्र त्रिपाठी : 'हंस' पत्रिका, नवंबर 2003, पृष्ठ - 85
2. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ - 53

से बढ़कर एक काव्य रचा गया। 'बिदेसिया', 'बेटी वियोग', 'गबरघिचोर', 'नाई बहार', 'पियां निसइल', आदि की रचना की।

'बिरहा बहार' ऐसी रचना है जिसमें पति अपनी पत्नी को गाँव छोड़कर परदेस धन कमाने जाता है लेकिन वहींपर किसी वेश्या की चुँगल में फँस जाता है। वियोग वर्णन, रस रंग के साथ वर्णन करते-करते आखिर में बिछुडे हुए फिर मिल जाते हैं। इसी 'बिरहा बहार' का आगे 'बिदेसिया' हुआ जो शैली के रूप में भोजपुरी में आज भी गाया जाता है। यह उदाहरण भिखारी ने अपने समाज से ही लिए थे।

'बेटी वियोग' ऐसे ही अनमेल विवाह की कहानी। हर गाँव बिहार, यु.पी. में बेटी बेंची जाती। बस उसका नाम, रंग, रूप, जात अलग था लेकिन बात वही थी। इसी सूत्र को पकड़कर भिखारी ने लिखा -

"वर खोजे चलि गइल-अ माल लेके धरे धइल-अ
बाबा लेखा खोजला दुलहवा हो बाबूजी !
पगली पर बगली भन्खल-अ हो बाबूजी
खाइ के जहर मीर जाइब हम हो बाबूजी !
रतिया के छतिया में बतिया जरेला मोरा
बीच डल्लस मोर बिचवान हो बाबूजी !"[1]

'गंगास्नान' ऐसा ही सामाजिक नाटक जिसमें वृद्ध माता-पिता का विलाप भिखारी ठाकुर ने प्रस्तुत किया। यहाँ पर उनकी संवेदनशीलता स्पष्ट हो जाती है। भिखारी ठाकुर ने अपने काव्य में हर एक विषय को प्रमुखता दी थी। जिसमें समाज की गन्दगी, धर्म के नामपर किया जानेवाला अधर्म, अनैतिक बातें, उच्चलोगों की कमजोर बातें आदि को ले अपना काव्य रचा जिससे समाज की आँखे खुल जायें और सामाजिक परिवर्तन के लिए गति मिल जाए। इस प्रकार समाज की हर एक संवेदना को इस कवि ने पकड़ लिया था। क्योंकि इसकी हर एक सांस इस समाज से जुड़ी थी। इसी में पला-बडा भिखारी इस

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ - 102

संवेदनशीलता को लेकर चला। कवि के रूप में भिखारी सब कुछ भूल जाते थे। जैसे - ''अपनी रौं में उठकर टहलने लगते है। फिर आकर लिखते है। विवाह के सारे अनुष्ठान सारे मंगल गीत और गारी लिखनी है उन्हें। अपने इस काम में इतने एकाग्र है कि वह कल्पना लोक ही सच लग रहा है और वास्तविक जगत् मानो स्वप्न की छाया-सा मचल रहा है।''[1] स्पष्ट है कि यहाँ एक संवेदनशील कवि और लेखक के रूप में भिखारी ठाकुर का व्यक्तित्व प्रस्तुत होता है।

3.1.5 कर्तव्यनिष्ठ :-

भिखारी ठाकुर एक तरफ अपने 'नाच गिरोह को कामयाबी की सीढ़ी पर चढ़वा रहे थे वहीं दूसरी तरफ समाज-घर परिवार' से उन्हें कड़ा विरोध भी सहन करना पड़ रहा था। लेकिन इस संघर्ष की राह में भी उन्हें अपने कर्तव्यों की चिंता थी। अपने पूरे नाच गिरोह के सदस्यों की, उनके घर परिवार वालों के साथ अपने घर-परिवार की जिम्मेदारी उन्होंने निभाई, वहीं दूसरी तरफ इस समाज के प्रति अपना दायित्व भी वे निभाते रहें। एक लोक कलाकार होकर समाज के बूरे रिवाजों के प्रति डँटकर खड़ा होकर कड़ा संघर्ष उन्होंने किया।

''भिखारी ठाकुर जांति के 'नाई' थे। यानी गाँव के बड़कों की टहलुआई में लगी जाति, जिसे उच्च वर्णो, वर्गो से सुविधानुसार थोड़ा बहुत मान-सम्मान मिल गया तो मिल गया नही तो व्यथा दुत्कार तो भाग्य में बदा ही था। नान्हें जाति का होने के कारण गाँव के 'गँवार', अनपढ़ बबुआनों से लेकर पढ़े-लिखे तथा कथित शिक्षित बौद्धिक समाज से मिलने वाली चोंटों का 'संघर्ष' ही उनका जीवन रहा।''[2] उनकी जाति उनकी प्रतिष्ठा की राह में सबसे बड़ी बाधा थी। लेकिन फिर भी अपने कर्तव्य को वे निभाते रहें।

जैसे-जैसे दल का प्रदर्शन उसकी प्रसिद्धि बढ़ती जा रही थी वैसे-वैसे भिखारी पर जिम्मेदारी बढ़ती गयी। दल के मालिकजी होने के कारण गिरोह के हर सदस्य की जिम्मेदारी उन्हीं पर थी। नाच के प्रदर्शन के लिए जिन-जिन घरों से लड़के लाए जाते

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ - 109
2. कैलाश बनवासी : साक्षात्कार, जुलाई 2003, पृष्ठ - 107

वहाँ उनके माता-पिता का विरोध आरै क्रोध उन्हें अलग से सहन करना पड़ रहा था। यह सब सहन करने पर भी वे उन परिवारों की पूरी जिम्मेदारी उठा लेते थे।

दल के कामयाबी के साथ भिखारी के पास भीड़ आये दिन द्वार पर जमा हो जाती। शादी-ब्याह, दवाई के लिए, खुशी-गम, मुकदमा या कर्जा मांगने ही लोग आ जाते। भिखारी हर व्यक्ति की मदद किया करते। वे अपना यह कर्तव्य मान लेते थे। 15 जनवरी 1934 में बड़ा भुकंप आया। गाँव के गाँव उजड गए। ऐसे में दीन-दुखियों की सेवा करने भिखारी निकल पडे। उनकी सेवा में उन्हें जीवन का सार्थक अनुभव हुआ। उपन्यास में भिखारी ठाकुर के कर्तव्यनिष्ठ होने की बात उजागर होती है।

3.1.6 प्रगतिशील विचारोंवाला :-

भिखारी का जीवन 'भिखारी' से शुरू होता है और 'ठाकुर' के शिखर तक पहुँचता है। उपेक्षा के अपने नारकीय दलदल से ऊपर उठकर इस उपेक्षित कलाकार ने गीत-संगीत, नृत्य और अभिनय के क्षेत्र में कहींपर तो विशिष्ट से विशिष्ट और विरल से विरल प्रयोग किए। एक तरफ भिखारी को जहाँ अपने दल को लोकप्रिय ही नहीं बल्कि नौटंकी की अश्लीलता हटाकर परिष्कृत करने का संघर्ष है तमाम प्रचलित, स्वीकृत अश्लीलताओं, विकृतियों के बींच। तो दूसरी ओर नान्हें जांति का होने के कारण गांव के गँवार अनपढ़ो से लेकर पढ़े-लिखे तथाकथित शिक्षित बौद्धिक समाज से मिलनेवाली चोटों का संघर्ष भी और इस सब में अपनी प्रगतिशील चेतना को भी भिखारी जीवित रखते हैं।

साहित्य में 'बेटी वियोग', 'गबर घिचोर', 'गंगास्नान', 'पिया निसइल', 'नाई बहार', 'बिदेसिया' आदि ऐसी ही प्रगतिशील रचनाएँ। तत्कालीन समाज में जहाँ एक तरफ विद्रोह के अवसाद और ब्रिटीश शासन था तो दूसरी ओर स्वाधीनता आन्दोलन सामाजिक नवजागरण तो पराभव, नवोन्मेष, संक्रमण आदि की स्थिति। समाज में जहाँ लोग एक-दूसरे के प्रति ही घृणा करते थे, सामाजिक विषमता की हर वह दीवारें ऊँची थी। समाज में निम्न जाति, किसान, स्त्री की स्थिति भी उतनी ही करूणापूर्ण थी। ऐसी स्थिति में

जहाँ आये दिन बाढ़-अकाल भी रहते और करों के बढ़ते बोझ भी। ऐसे करूणापूर्ण समाज में भिखारी ने अपने प्रगतिशील विचारों से क्रांति की आग फैला दी।

'नाई बहार' उनकी प्रगतिशील विचार की रचना है। बच्चे के जन्म से लेकर उसके नहलाने, नह काटने तक के काम नाई-नाईन को करने पड़ता है और इसके लिए अगर लड़का होता है तो चार आने और लड़की हुई तो दो आने ही मिल जाते। ऐसे समय अगर बच्चे की मौत हो जाती है तो उसका पाप आ जाता है नाई के ही सर पर। साथ में 'गोहत्या' आदि का पाप भी नाई के सर पर ही रख दिया जाता है। तो दूसरी तरफ बच्चे की कुंडली देखने के काम के लिए पंडितजी को मिलते है बाईस रुपये। यह समाज की विषमता देखकर तिलमिला उठते है भिखारी। और इसीसे आगे 'नाई बहार' की रचना साकार हो जाती है।

देश की आजादी के बाद भिखारी सोचते है कि ''क्या रातोरात सबकुछ बदल थोडे ही जायेगा। कल भी हम नाई थे और आज भी है। भिखारी मानते है कि, असली आझादी तो यहीं होंगी जहाँपर यह दुनिया बदलेंगी। जांति-पांति की घृणा बन्द होगी। हिन्दू-मुस्लिम की घृणा बन्द होंगी। हर जगह समानता होंगी। तो ही यह सफल होगा।''[1]

भिखारी के इन प्रगतिशील विचारों से ब्राह्मण, राजपुत, भूमिहार और कायस्थों के ज्यादातर घराने और उन घरानों में जो खुद को इज्जतदार या ऊँचा मानते थे वे भिखारी को एक तरफ से समाज द्रोही के रूप में मानते थे। गांव-जवार में परिवार के बड़े-बूढ़ों ने बच्चों-जवानों को पक्के तौर पर बता दिया था कि भिखारी के नाच में कोई नहीं जाएगा, उन्हें इस बात का सख्त मलाल था कि, भिखारी सारे लड़के-लड़कियाँ को खराब करता हैं। अत: भिखारी के प्रगतिशील विचार उसके व्यक्तित्व से एवं उसके साहित्य से स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर हो जाते हैं।

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ -

3.1.7 विविध कलाओं का ज्ञाता :-

'सूत्रधार' के भिखारी ठाकुर एक ऐसा चरित्र है जो सिर्फ नृत्य नहीं, संगीत नहीं अभिनय नहीं बल्कि साहित्य, संस्कृति और सभीं कलाओं का मिश्रण है। एक अनपढ़ नाई होकर भी वह आगे अपने मेहनत से तप से अर्जित करता है यह सिद्धि। 'काला अक्षर भैसे बराबर' समझनेवाले भिखारी टाकुर जब पढ़ाई पर ध्यान देते है तो एक-एक अक्षर जोड़कर शब्द बन जाते हैं और फिर साकार होती गई एक से बढ़कर एक रचना। 'बेटी वियोग', 'बिदेसिया', कलयुग प्रेम', 'गंगास्नान', 'पूत्रवध', 'पिया निसइल', 'नाई बहार' आदि काव्य। हर काव्य अपने में अलग। सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा करनेवाला, जातिगत कटु रूढियों के प्रति आवाज उठानेवाला, उतनाही संवेदनशील ऐसा काव्य । भिखारी मानते हैं कि लोगों के दिल में बसीं जातिभेद के नजरिया को हटाना होगा। जहाँ हिन्दू-मुस्लिम भेद मिटेंगा, जहाँ उच्चवर्ग-निम्नवर्ग भेद मिटेंगा वही पर हमें सच्ची आज़ादी मिल जाएंगी। जनमानस के मन की यह बातें एक संवेदनशील कवि होने के नाते भिखारी अत्यंत सहजता के साथ जान लेते। उनका काव्य याने ऐसा दर्पण था जिसमें समाज का 'प्रतिरूप' स्पष्ट दिखाई देता था।

काव्य के साथ-साथ भिखारी अपने प्रदर्शन में अभिनय भी किया करते थे। भिखारी जानते थे कि अभिनय के सहारे ही किसी भी पात्र को जीवंत किया जा सकता है। अपने अभिनय कला में वे पूरी तरह दुनिया-जहांन को भूल जाते। भूल जाते वे एक पुरूष हैं, वे एक मालिकजी हैं। ''पहले जसोदा की भूमिका में उतरें। घर-गृहस्थी के कामों में व्यस्त, अपने लाडले कृष्ण की उलाहनाएँ सुनते-सुनते आजिज, एक हाथ से साड़ी सँभालते हुए खिंसियाई नजरों से देखती है, धमकाती है कभी कन्हैया को और कभी गोपियों को !

दूसरी बार पहली सखी की भूमिका में उतरें। ''हम मा बसब तोरी नगरी जसोदा मैया, हम ना बसब ...'' साडी सँभालते हुए लम्बे-लम्बे हाथों को चमकाकर उलहानाएँ देते हुए ... जीवंत अभिनय !''[1]

इस प्रकार अभिनय की कला में प्रवीण थे।

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ - 92

भिखारी की आवाज भी उनकी पहचान बनी थी। दिन-ब-दिन आवाज मंझती गई। बहुत, सूरीली आवाज में वह अपने काव्यों को प्रदर्शित करते थे। उनका मानना था कि, प्रकृति के हर छोटी-बड़ी वस्तु में अपना एक गीत है, अपनी एक लय है और इन्हीं गीतों लयों से एक धुन बनती है जो अत्यंत सहज है। इसका सूत्रधार है ईश्वर। जो इन हर उपादानों में अपना गीत पीरो देता है।

भिखारी नाच को शिवजी का वरदान मान लेते थे। उनका कहना था, "ए बबुआ लोग, नाच को छोटा मत जानो, नाच शिवजीका वरदान है, कन्हैया जी का परसाद है। सिर पर भरल गगरी, गोड़ में घुँघरू और गोड़ कहाँ ... तो थाली के बारीपर अइसा नाचो कि, न एक बून पानी गिरे, न लय टूटे, न गोड़ कटे ...। अतना कठिन साधना है भाई, जो साध पाए, वही शंकर भगवान का असली पूजारी है, बाकी तो कौरा पे कूदनेवाला कुकुर।"[2]

इसप्रकार साहित्य, नृत्य, संगीत आदि विविध कलाओं में वे निपुण थे। ऐसे संस्कृति पुरूष भिखारी को सम्मानित किया। 'विद्यापति भवन पटना' में भारतीय नृत्य कला मंदिर में राज्यपाल अनंत शयनम् अय्यंगर के हाथों नौ कलाकारों को सम्मानित किया जिसमें सबसे लोकप्रिय, सम्मानित भोजपुरी गीत संगीत, नृत्य, अभिनय के सम्मानित 'सूत्रधार' 'भिखारी ठाकुर' थे तभी 'बिहार भूषण' उपाधि से सम्मानित किया।

3.1.8 आदर्श विचारों का समर्थक :-

भिखारी के जीवन में एक तरफ सामाजिक प्रताडना, दूसरी तरफ घर-परिवार का तनाव, तीसरी तरफ थी एक आंतरिक व्याकुलता जो रचनात्मकता के लिए छटपटा रही थी। नाई वैसे तो दलित जाति नहीं है लेकिन पग-पग पर मिलता अपमान उपेक्षा इसके कारण इस वर्ग को भी निम्न जाति में ही ला खड़ा किया जाता है। वैसे तो जिस-जिस का शोषण समाज में होता है उसे 'शोषित' कहा जाता है। बचपन से अवहेलित, अनपढ़ भिखारी इस जाति-पाति के रूढ़ियों-परंपराओं के बंधनों से घृणा करता है। इन बंधनों को तोड़कर एक स्वस्थ समाज की रचना आवश्यक मानता है लेकिन उच्चवर्ग की

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ - 228-229

उपेक्षित दृष्टि हर क्षण उनके जांति का एहसास उन्हें कराती रहती। जीवनभर अखंड संघर्ष सहते हुए और अपार लोकप्रियता के बावजुद भी ये उपेक्षा, घृणाभरी नजरें उनका पीछा करती रही लेकिन इन उपेक्षा से आगे उन्होंने एक स्वस्थ समाज का सपना देखा था। अपने इन आदर्श विचारों को वे उम्र भर अपने कार्यों-कृतियों, अपने प्रदर्शन के द्वारा लोकमानस के मन में प्रतिबिंबित करते रहें।

कलकत्ते जैसे शहर में पैसा कमाने गए गाँव के लोग वहाँ किसी वेश्या की संगति में, बूरी आदतों में फंस जातें। अपनी रचना 'बिदेसिया' के द्वारा इसी को भिखारी ने प्रस्तुत किया। इस समस्या का समाधान भी उसी रचना में था। जिसे पढ़कर इस बूरी सोहबत में अपनी जिंदगी गँवा देनेवाले बाबूलाल उन्हें कहते हैं, ''काश ! तुमने यह 'बरहा बहार' दस-बीस साल पहले लिखा होता तो कम से कम मेरी जिंदगी तो कलकत्ते में सड़कर गारत न हुई रहती।''[1]

स्त्री के बारे में भी भिखारी के विचार अत्यंत आदर्श थे। स्त्री को सिर्फ भोग्यवस्तु मानना अत्यंत गलत हैं। वे उसके सभीं रूपों की पूजा करते थे। उसके देवी, दुर्गा के रूपों को मानते थे। उनका मानना था कि स्त्री को समाज में सभी अधिकार मिलें। जीवन जीने के साथ अपना जीवन साथी चुनने तक के अधिकार उसे मिल जाए। वे कहते, ''मेहरारू मरजाद है, मरद की सखी है, माई है, बहिनी है, बेटी है, भौजाई है, भावज है, मामी, फूआ-काकी, आजी, नानी कितने-कितने रूप हैं उसके ममता का समुद्दर-सुन्नर, फूल-सी महक महकती, नरम, प्रेम और वात्सल्य से छलकती हुई।''[2]

'बेटी वियोग' के प्रदर्शन से गाँव-गाँव क्रांति की आग फैल गई। अनमेल विवाह से बेटियों विरोध कर भाग जाती। भिखारी कहते हैं -''जौन बेटी के बेचत जाला, ओकर दरद एकरो से जियादा बा बाबू साहब, हमरा कलम में एतना तागत कहाँ कि बयान कर पाई। अतना जरनि बा, अतना घुटनि बा कि भूसा के आगी नियर सुलगत रह जाएली जिनगानी। एकहूँ बेटी के बेचल हमरा नाटक-तमाशा से रूक जाए तो धन्न मानीं।''[3]

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ - 81
2. वही, पृष्ठ - 98
3. वही, पृष्ठ - 200

'बेटी वियोग' के प्रदर्शन में सबसे अहं भूमिका स्त्रियों की मानते हैं। यह प्रसंग जिन स्त्रियोंपर गुजरता है अगर वे ही इसे न देखें तो इसका क्या उपयोग ? भिखारी मानते हैं कि स्त्री को वो अधिकार निश्चित तौर से मिलना ही चाहिए। भिखारी मानते है कि जब कोई रचनाकार अपनी रचना लिखता है तो वह गीत पूरे समाज का हो जाता है। हर आदमी उससे अपने जिंदगी की तरंग, दु:ख, तकलीफ को देखता है और यह गीत उसमें फला-फुला, गाम उठा वह उसकी आत्मा का उल्हास है या फिर विलाप और इसे हम जनमानस में संप्रेषित होने से नहीं रोक सकते। पूरे परिवार, समाज, देश को एक ही डोर से बांधने की आस थी उसकी। जाति-पाति की घृणा मिटाने की आकांक्षा थी। इस प्रकार वे आदर्श विचारों के पुरस्कर्ता थे।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि 'सूत्रधार' के भिखारी ठाकुर एक ऐसा चरित्र जो विविध विशेषताओंसे युक्त हैं। निरंतर उद्योजक, क्रांतिकारी, संवेदनशील आदि विविध रूप उनके यहाँ स्पष्ट होते है। इसी व्यक्तित्व के द्वारा उन्होंने भोजपुरी लोकराग एवं संस्कृति को स्पष्ट किया।

3.2 'महात्मा' के महात्मा फुले :-

महात्मा जोतिराव फुले के चरित्र पर आधारित 'महात्मा' न सिर्फ जोतिराव फुले की जीवन कहानी है बल्कि तत्कालीन समाज, संस्कृति को प्रदर्शित करनेवाली कहानी भी है। यहाँ फुले जी के व्यक्तित्व पर संक्षिप्त में प्रकाश डालते हैं -

अगर उपन्यास किसी व्यक्ति के चरित्र पर केंद्रित हो तो उसे 'चरित्रात्मक उपन्यास' कहते हैं जो बड़ा कठिन काम होता है। चरित्रात्मक उपन्यास लिखने वाला लेखक उपन्यासकार भी और इतिहासकार भी होता है। उस वक्त उसे अपने प्रतिभा के साथ-साथ सबूत भी देने होते हैं। किसी पात्र के बारें में उपन्यास में लिखते समय या उसे प्रस्तुत करते समय उस व्यक्ति के मन की भावनाओं के साथ-साथ उस बात के सबुत भी अत्यंत सरल रूप में देने होते हैं। उसीं में से वास्तविकता को कल्पना का आवरण देनेवाला

रवींद्र ठाकुर का उपन्यास है 'महात्म'। एक चरित्र प्रधान उपन्यास के साथ-साथ उसमें सामाजिक जीवन का भी चित्रण आया है। इसमें कुल 189 चरित्र हैं लेकिन इसमें महत्त्वपूर्ण चरित्र है महात्मा जोतिराव फुले।

3.2.1 ध्येय से संप्रेरित व्यक्तित्व :-

संतों के बारें में कहा जाता है कि जो समाज के हीत के लिए अपना सर्वस्व त्याग देते हैं ऐसे लोग ही 'संत' होते हैं। ऐसी बातें जिसमें लक्षणों के साथ दिखाई देती हैं वे हैं महात्मा जोतिराव फुले याने 'तात्या'। जोतिराव का व्यक्तित्व ठीक वैसा है जैसे कोई बात मन में ठान ली है और उसे पूरा किए बिना वे मानते नहीं। इसके लिए हर कठिनाई का सामना कर वे इंगित लक्ष्य को हासिल करते थे। बचपन से थॉमस पेन, अब्राह्मन लिंकन, छत्रपति शिवाजी आदि के विचारों से प्रेरित थे। बचपन में अंग्रेजों के खिलाफ अपनी लड़ाई शुरू रखने की बात करनेवाले जोतिराव अपने एक दोस्त के भाई के शादी में हुए अपमान से तिलमिला उठते है। मानव की प्रतिष्ठा, गुलामी से मुक्ति, व्यक्ति स्वाधीनता आदि पेन के विचारों से उनमें परिवर्तन आता है। राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद फिर से पेशवों की गुलामी उन्हें पसंद नहीं थी इससे अधिक वे व्यक्ति स्वतंत्रता को महत्वपूर्ण मानते थे और इसके लिए व्यक्ति के अस्तित्व को झकझोरना होंगा ऐसा उनका मत था। इन्हीं विचारों से वे अपना ध्येय निश्चित कर देते है। पूरे समाज परिवर्तन की चाह, निम्न जांति के बच्चों को शिक्षित करना, स्त्रियों की शिक्षा तथा उनकी उन्नति आदि कार्य करना वह निश्चित कर देते हैं और न सिर्फ यह ध्येय निश्चित कर देते है तो वे उसकी तरफ कदम बढ़ाकर अपना कार्य जारी कर देते है महात्मा जोतिराव फुले एक ध्येय संप्रेषित व्यक्ति थे यही बात यहाँ स्पष्ट होती है।

3.2.2 स्वतंत्र विचारशक्ति :-

कभी-कभी कोई व्यक्ति किसी एक गुण के कारण वैशिष्ट्यपूर्ण लगता है लेकिन एकाध व्यक्ति ऐसा होता है जो सामान्य होकर भी अनेक गुणों के कारण असामान्य होता है। इसी असामान्यत्व की बात फुले पर लागू होती है।

जोतिराव और सावित्री को अपनी कोई औलाद नहीं थी। लेकिन इस बात कें लिए जोतिराव ने कभी सावित्री को दोष नहीं दिया। वे मानते हैं - ''सदुभाऊ, एखाद्या जोडप्याला मूल होत नसेल, तर त्याचा दोष एकट्या स्त्री कडं कसा ? एकट्या स्त्रीला वांझपणाचा दोष लावणं हा निदर्यपणा आहे. नवऱ्यात वांझपणाचा दोष नसेल कशावरुन?''[1] (''सदुभाऊ, किसी दांपत्य को अगर बच्चा नहीं है तो इसमें सिर्फ उस अकेली औरत का दोष कैसे ? अकेली स्त्री पर बांझपन का आरोप लगाना यह बहुत निदर्यता की बात है। पति में बांझपन नहीं होगा' यह कैसे मान ले ?'')

इससे उनकी स्वतंत्र विचारशक्ति स्पष्ट हो जाती है। जोतिराव हमेशा नए-नए विचारों का समर्थन करते रहें। स्त्री के उन्नति के लिए हर संभव प्रयास करने की उनकी लालसा थी। वे 'स्त्री' को सभी अधिकार देने के पक्ष में थे। पहली पत्नी के रहते दूसरा विवाह करना उन्हें मंजूर न था। जब उनके पिता उन्हें दूसरे विवाह के बारे में पूछते हैं तो वे साफ इन्कार कर देते हैं। ''सदुभाऊ, आम्हांला मूल नाही, याचा संपूर्ण दोष तुम्ही सावित्रीवर ढकलून मोकळे होत आहात. मुळात पहिली स्त्री असताना, केवळ तेला मूल होत नाही म्हणून दुसरं लग्न करणं ही पद्धत अत्यंत हीन आणि मानवताशून्य आहे. त्यात स्त्रियांच्या मनाचा कोणता विचार आपण करतो ? माझ्याबाबत म्हणाल, तर दुसऱ्या लग्नाचा विचार मी करु शकत नाही''[2] (''सदुभाऊ, हम को बच्चा नहीं होता इसका पूरा दोष आप सावित्री पर लगा रहे हैं। मूल में अगर पहली स्त्री होकर भी सिर्फ उसे बच्चे नहीं है इस कारण दूसरा विवाह करना यह रीति अत्यंत हीन और मानवीयता से रहित है। इसमें स्त्री के मन का कौन-सा विचार आप करते हैं ? मेरे बारे में कहते हो तो, दूसरे विवाह का विचार मैं नहीं कर सकता।'') इस प्रकार पूरे स्त्री जाति के प्रति जोतिराव के मन में अत्यंत उदार भाव थे। उसकी स्वाधीनता के प्रति फुले सचेत थे।

समाज की स्वाधीनता, जाति भेद अव्यवस्था, शोषकों से दलितों पर होनेवाला अन्याय, आदि के प्रति फुले की विचारशक्ति को देखा जा सकता है जो परंपरागत सड़ी-गली रुढ़ियों के विरोध में थी।

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 141
2. वही, पृष्ठ - 141-142

3.2.3 आदर्श विचारों का समर्थक :-

समाज की तत्कालीन स्थिति देखकर जोतिराव को हमेशा से लगता कि पहले सामाजिक बंधनों को नष्ट करना चाहिए और फिर राजनैतिक क्रांति करनी चाहिए। बचपन से ही शिवाजी महाराज, जॉर्ज वॉशिंग्टन, पेन आदि के विचारोंको पढ़कर उसका प्रभाव फुले के व्यक्तित्व पर पड़ा था। उनका मानना था कि, ईश्वरनिष्ठा नैतिक सत्य का आचरण है यही धर्म जीवन है। यह सृष्टि ईश्वर ने निर्माण की है और यहीं हमें दिखाई देती है। यही धर्मग्रंथ है। दुनिया के हर मानव का एक ही धर्म है और वह है, 'मानवता का धर्म। हर व्यक्ति के इस स्वतंत्रता में किसी दूसरे का हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है।

जोतिराव फुले का मानना है कि शिक्षा के क्षेत्र में सबसे पहले अगर एक 'स्त्री' पढ़-लिख जाती है, तो निश्चित रूप से वह परिवार, वह समाज और फिर देश भी शिक्षित होगा। ''शाळा काढायची. पशूपणा मात्र प्राप्त झालेल्या माणसांना त्यांच्या माणूसपणाची जाणीव करुन द्यायची. त्यातही आधी स्त्रियांची शाळा. स्त्री हा ब्राह्मणी धर्माचा पहिला बळी आहे. तिलाच आधी शहाणं केलं पाहिजे. स्त्री शिकली, मग मुलं शिकतील. कुटूंब शिकेल. असं घडेल, तेव्हा ही समाजस्थिती ती पालटायला मग वेळ लागणार नाही. महार-मांग मुलांसाठी मी शाळा सुरु करणार आहे. तुमची सहमती आहे ना ?'' (''स्कूल खुलवाना है। पशुवृत्ति प्राप्त हुए मनुष्य को उसकी मनुष्यता याद दिलानी है। उसमें भी पहले स्त्रियों का स्कूल। 'स्त्री' यह ब्राह्मण धर्म का पहला बलि है। उसे ही पहले होशियार करना है। स्त्री पढेगी तो बच्चे पढ़ेंगे। परिवार पढ़ेगा। इस तरह से जब घटित होंगा तब समाज की स्थिति बदलने में वक्त नहीं लगेगा। हरिजन-मातंग के बच्चों के लिए भी स्कूल शुरू करवाना है। आपकी इजाजत है क्या ?''[1]

इस तरह शिक्षा के प्रति उनके विचार आदर्श और ऊँचे थे। बच्चों को सिर्फ शिक्षित करना उनका उद्देश्य नहीं था। वे उन्हें अपने अधिकारों के प्रति भी सज़ग करवाना चाहते थे।

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 37

परंपरागत रूढ़ियों के प्रति उनके मन में तीव्र आक्रोश था। उनका कहना था कि इन बूरे रुढ़ियों-रीवाजों के कारण समाज अपनी उन्नति नहीं कर सकता। इसी लिए हमें इन गलत रूढ़ियों का डटकर मुकाब्ला करना है। पिता के मृत्यु के बाद फुले परंपरागत रुढ़ियों को त्याग देते है। पिण्डदान में ब्राह्मणों के बजाय दीन-हीन, अपाहिज लोगों को अन्नदान करते हैं। आज भी हम देखते हैं कि यह काम उतना ही कठिन है लेकिन यही काम उन्होंने उस समय में किया था जो आज भी आदर्श है।

उनका मानना था कि अपना कार्य करते समय सामने कितनी ही मुसीबतें क्यों न आए उसका मुकाबला करना ही चाहिए। वे कहते है - ''अडचणी आहेतच. पण आता पाय मागं घेऊन चालणार नाही. टॉमस पेन काय म्हणतो, माहित आहे ना ? तुमच्यापुढील संघर्ष जेवढा बिकट असेल, तेवढंच तुमचं यश ही अधिक उज्ज्वल असेल. आपण प्रयत्न केला तर काहीच अशक्य नाही. आता हेच पाहा, तुझ्या वहिनीनं शिकायचं ठरवलं आहे.'' (कठिनाइयाँ तो हैं। फिर पाँव पीछे लेकर चलेगा नहीं। टॉमस पेन क्या कहते हैं, मालूम है? आपके सामने संघर्ष जितना कठिन होगा, उतना ही तुम्हारा यश अधिक तेजस्वी होगा। हमने प्रयास किया तो कुछ भी असंभव नहीं। अब यही देख लो ना, तुम्हारे भाभी ने पढ़ना निश्चित किया।)''[1]

इन्हीं विचारों के कारण आगे फुले ने अपना पूरा जीवन सामाजिक कार्य के लिए समर्पित कर दिया। दलितों के बच्चों के लिए स्कूल खुलवाना, बालक हत्या प्रतिबंधक गृह की स्थापना, विधवोंका पुनर्विवाह, सत्यशोधक समाज की स्थापना अकालपीड़ितों के लिए मदद आदि से उनके विचारों की आदर्शता स्पष्ट हो जाती है।

3.2.4 कार्यतत्परता :-

आजीवन अपना ध्येय निश्चित कर उसकी तरफ अपने कदम बढ़ानेवाले फुले ने जब समाज परिवर्तन की राह पकड़ ली तो समाज के ठेकेंदारों ने उन पर हर प्रकार से प्रहार किया। कभी उनका अपमान कर, कभी बातों से प्रहार कर तो कभी उन पर गुंडें भेजकर। लेकिन आनेवाले हर प्रहार को फुले ने मुँह तोड़ जवाब दे दिया। अपना कार्य करते

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 38

समय बीच में जितनी भी बाधाएँ लायी जाती उनका सामना पूरे हौसले के साथ वे करते थे और हर बाधा को पार कर उस पर जीत हासिल कर ही लेते। अपने मन के दृढ़ विचारों का उन्हें सबसे बड़ा सहारा था। इसे उन्होंने कभी कच्चा होने नहीं दिया।

जोतिराव फुले पूरी तरह से जानते थे कि न सर्फ विचारों से प्रगति नहीं हो सकती इसके लिए उन विचारों को कृति की भी आवश्यकता है। वे जानते थे कि सदियों से पददलित इस समाज में उच्चवर्ग का निम्न वर्ग पर इसी तरह से अत्याचार चल रहा है। ऐसे इस समाज को सिर्फ 'शिक्षा' द्वारा ही परिवर्तित किया जा सकता है। जब एक स्त्री शिक्षित होगी तभी वह परिवार, समाज, देश शिक्षित होगा यह बात वे जानते थे। स्त्री शिक्षा के इस विचारों को प्रेरणा दी। इसके लिए सबसे पहले अपने घर से शुरूवात की। अपनी पत्नी सावित्री को शिक्षित किया। इसके लिए घर-परिवार, बिरादरी-जाति का कड़ा विरोध भी उन्हें सहन करना पड़ा। इसके साथ अपना घर भी छोड़ना पड़ा।

तत्कालीन सनातनी समाज में विधवाओं की दुर्गति हुआ करती। ऐसें में उनके पुनर्विवाह को लेकर समाज विरोध करता। फुले ने ऐसे विधवा पुनर्विवाह को न सिर्फ प्रोत्साहन दिया तो ऐसे विवाह करवा भी दिए। ऐसे में समाज में समाजसुधारक होने का ढोंग करनेवाले लोंगों का पर्दाफाश भी किया। जैसे न्या. रानडे स्वयं को समाजसुधारक कहलाते थे लेकिन खुद की विधवा बहन का पुनर्विवाह करने के वे खिलाफ थे। ऐसे रावसाहेब का पर्दाफाश उन्होंने किया।

शिक्षा के क्षेत्र में सामान्य, शोषित लोगों के लिए 'गुलामगिरी' ग्रंथ रचा। किसानों की करूण स्थिति पर 'शेतकऱ्यांचा असूड' (किसान का कोड़ा) रचा। सदियों से निद्रिस्त इस समाज को झकझोरने के लिए 'तृतीयरत्न' नाटक रचा। इस प्रकार साहित्यिक जागृति की। अत: न सिर्फ विचारों से अपना कार्य भाग बढ़ाया बल्कि इन विचारों को प्रत्यक्ष कृति का साथ दे दिया। इस प्रकार उनकी कार्यतत्परता उपन्यास में स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होती हैं।

3.2.5 क्रांतिकारी व्यक्तित्व :-

परंपरागत समाज में पीढ़ियों से चले आए संकुचित विचारधारा, दीन दुखियों पर होते आ रहे प्रहार, सामाजिक विषमता शूद्रों की करूणामय स्थिति, किसानों की दुर्दशा आदि सभी ओर से सामाजिक परिवर्तन की माँग महात्मा फुले ने की। यह सब उन्होंने 'पुणे' जैसे सनातनी रूढ़िवादी लोगों के शहर में रहकर पूरा किया। यही पर उनके स्वभाव का क्रांतिकारी रूप प्रकाश में आ जाता है। महात्मा फुले एक क्रांतिकारी व्यक्ति, लेखक, कवि, समाज सुधारक आदि रूप में दिखाई देते हैं। यह क्रांति के बीज उनके हृदय पर बचपन से इसी समाज ने दिए ठोकरों के कारण उत्पन्न हुए थे। समाज में निम्न जातियों पर उच्च वर्गों द्वारा होनेवाला अन्याय-अत्याचार देखकर जोतिराव तिलमिला उठते। स्त्री, दलित, किसान आदि का दु:ख उन्होंने जाना था।

परंपरागत रूढ़ियों के प्रति उनके मन में तीव्र आक्रोश था। वे कहते - ''परंपरा टाळून ते विचार करू शकत नाहीत. ब्राह्मणी धर्माच्या दृष्टीनं आम्ही शूद्र आहोत. मग आम्हांला विद्येचा अधिकार कुठला ? माणसांचे जगण्याचे मूलभूत हक्क मागायला आम्ही माणसं तरी आहोत का ? अतिशूद्रांची स्थिती तर आमच्याहून भयंकर आहे. त्यांच्या जिन्याला कुत्र्यामांजराचीही किंमत नाही. हे सहन होत नाही, सावित्री ... हे सहन होत नाही...''[1] (''वे परंपरा टालकर विचार नहीं कर सकते। ब्राह्मण धर्म के अनुसार हम शूद्र है। फिर हमें विद्या का हक़ कैसे ? मनुष्य जीवन के मूलभूत अधिकार माँगने के लिए क्या हम मनुष्य तो हैं? अतिशूद्रों की स्थिति तो हमसे भी भयंकर है। उनके जीवन को कुत्ते-बिल्लियों जितना भी मूल्य नहीं। यह अब सहन नहीं होता, सावित्री ... यह सहन नहीं होता ...)''

परंपरा के विरोध में व्ह हमेशा थे। उसी तरह समाज में समाजसुधारक बनने का ढोंग करनेवालों के प्रति भी उनके मन तीव्र घृणा थी। ऐसी ही समाजसुधारक का ढोंग करनेवाले रावसाहेब कावे पर्दाफाश कर देते हैं। वे कहते -''विचारांना कृतीची जोड नसेल, तर शाब्दिक पाठबळाला कुठला अर्थ, रावसाहेब? फक्त भाषणं करुन आणि लेख

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 48

लिहून सुधारणा होणार नाहीत. सोसायची तयारी ठेवली, तरच काही घडेल. तसं घडलं नाही, तर विचार कितीही चांगले असले, तरी म्यानातल्या तलवारीसारखे गंजून जाऊन निरुपयोगी ठरतील.''[1] ''(विचारों कों अगर कृति का साथ न हो, तो सिर्फ शब्दों के सहारे का कुछ अर्थ नहीं, रावसाहेब? सिर्फ भाषण कर और लेख लिखकर कुछ सुधरनेवाला नहीं। सहन करने की तैयारी हो तभी कुछ घटित होगा। अगर वैसा नहीं हुआ, तो विचार कितने भी अच्छे क्यों न हो, लेकिन वे म्यान में रखी तलवार की तरह गंज कर निरर्थक ही हो जायेंगें)''

अपने इन्हीं क्रांतिकारी विचारों को फुले ने अपने साहित्य में भी प्रस्तुत किया। ईश्वर और भक्त के दरम्यान पंडितों का कुछ भी काम नहीं हैं यह बात उन्होंने बताई - वे कहते हैं, ''हिंदू धर्माचे ब्राह्मण वकीला लुटिले सकळ। जन त्यांनें। धर्म मिषें लोक नार्मडिले वकीले। स्वार्थ साधले। आपले ते॥ न लगे वकील देव दरबारीं। भक्ती एक खरी। जोती म्हणे॥''[2] (जोति कहते हैं - हिंदू धर्म के ब्राह्मण वकील हैं जिन्होंने पूरे जन को लूट लिया है। धर्म के नाम पर लोगों को फँसाकर अपना सार्थ वे पूरा करते हैं। ईश्वर की भक्ति के लिए फिर ऐसे वकील लोगों की कोई जरूरत नहीं।)

इन्हीं विचारों से क्रांति के बीज उन्होंने समाज में बो दिए। कहना सही होगा कि जोतिराव फुले के व्यक्तित्व का क्रांतिकारी रूप उनके कृतित्व और साहित्य से स्पष्ट होता है।

3.2.6 संवदेनशील कवि, लेखक, व्यक्ति :-

समाज ने महात्मा जोतिराव फुले को 'महात्मा' की उपाधि दी क्योंकि सारी जनजातियों के हृदय पर उन्होंने अपना स्थान बनाया था। जहाँ एक तरफ स्वतंत्र विचार शक्ति के साथ क्रांतिकारी विचार उनमें दिखाई देते हैं वही दूसरी ओर उनमें छिपा संवेदनशील कवि, लेखक, व्यक्ति यहाँ उजागर होता है। उनके इस संवेदनशील व्यक्तित्व के कारण ही समाज के दीन-दुखियों की दु:खों को, उनकी आंतरिक व्याकुलता को फुले ने जाना था और इसी कारण जब यह स्पंदन कागज पर उतर जाता तो वहाँ समाज का यह मर्म पूरे सज़गता के साथ चित्रित हो जाता।

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 178
2. वही, पृष्ठ - 206

एक किसान की दुर्दशा, उसकी करूण पूर्ण त्रासदी, दलितों का होता शोषण, उनका दु:ख आदि को उन्होंने 'गुलामगिरी', 'शेतकऱ्यांचा आसूड', 'तृतीय रत्न' आदि में स्पष्ट किया। पंडित जी किस प्रकार शूद्रों के बच्चों को पढ़ाने से इन्कार करते हैं। फिर किस तरह वे बच्चे अनपढ़ रह जाते हैं। इसका वर्णन फुले इन शब्दों में करते हैं -

''ज्याचा माल, त्याचे हाल, पडल्या पठाणांच्या पंक्ती
मुले ती भलत्याची शिकती ॥
माळी कुणबी शेती खपुनी
मिळेना लंगोटी पुरती ॥''[1]

(जिसका माल उसी को वेदना, पड़ गई पठानों की पंक्तियाँ
बच्चे अन्यों के ही पढ़ते हैं
मालि कुणबि खेती में परिश्रम करते हैं
फिर भी नसीब में तन ढँकने को कपड़ा नहीं।)

बचपन से फुले के मन पर टॉमसपेन, छत्रपति शिवाजी आदि के विचारों का प्रभाव था। छत्रपति शिवाजी महाराज के प्रति उनके मन में अनन्य साधारण भाव था। इसी उच्च विचारों से उन्होंने उन पर इन शब्दों में पोवाडा रचा -

''कुळवाडी भूषण पवाडा गातो भोसल्यांचा
छत्रपति शिवाजीचा ॥
लंगोट्यास देई जानवी पोशिंदा कुणब्यांचा।
काळ तो असे यवनांचा ॥''[2]

(भोसले घराने के कुलभूषण छत्रपति
शिवाजी महाराज का पोवाड़ा
यवनों के साम्राज्य में गरिबों का
रखवाला ऐसा यह राजा।)

फुले ने सभी धर्मा में 'सत्य' धर्म को श्रेष्ठ माना। पूरे विश्व का निर्माण कर्ता सिर्फ एक ही ईश्वर है। इसी कारण पूरे संसार के मानव जांति का धर्म भी एक ही है। ऐसा

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 158
2. वही, पृष्ठ - 166

उनका मानना था। वे कहते - ''मानव सारखे निर्मि कें निर्मिले। कमी नाही केले। कोणी एक।
कमी जास्ती बुद्धी मानवा के पिली। कोणां नाही दिली। पिढी जादा।
शूद्रादिक नाहीं कशामध्ये उणा। अवयवी खुणा। आर्यांपरी॥''[1]

(मानव जाति को कम-अधिक बुद्धि सभी को मिली। पीढ़ो के सहारे किसी को अधिक नहीं मिली। आर्यों के जैसे ही शूद्र को भी सभी अवयव प्राप्त हुए। वह भी किसी बात में आर्यों से कम नहीं।)

साहित्य के साथ उनके व्यवहार में भी यह संवेदना स्पष्ट दिखाई देती है। अपने बालकाश्रम के अनाथ बच्चों के साथ फुले बहुत रम जाते। उनके खाने-पीने से लेकर उनके पढ़ाई और भविष्य की चिंता में खो जाते।

दूसरों के दु:खों को वे अत्यंत निकटता के साथ वह महसूस करते। अपने प्रियजनों के दु:ख में भी उनकी संवेदना मुखर हो जाती। अपने इस्ो स्वभाव के कारण समाज के हर व्यक्ति के साथ वे तादात्म्य स्थापित कर सके। इस प्रकार अपने किसान भाइयों की दुर्दशा उन्होंने 'शेतकऱ्यांचा आसूड' में प्रकट की। वे कहते हैं -

''गाढवें गावी गाढवी सुवासिनी। झाली रामजानी देवांगना॥
पुरे कर आता खेळ गारुड्याचा। बावन बिराचा छाछू तुझा॥
... सत्या करी साह्य सार्थक जन्मांचें। बोल जोतीरावाचे मनीं तोल॥''[2]

(पीढ़ियों से गधों के गाँव में गधों की सत्ता चल रही है। किसी सपेरे के खेल की तरह यह खेल चल ही रहा है। ... इसलिए सत्य यही धर्म है जो पूरे जन्म का सार्थक कल्याण कर लेगा। यह जोतिराव के बोल मन में तौले जाए।)

अपनी रचना, अपने लेखन, अपने व्यक्तित्व आदि से उनकी संवेदनशील वृत्ति स्पष्ट होती है। यह संवेदना उनकी उनके परिवार के प्रति भी थी

3.2.7 प्रगतिशील विचारोंवाला :-

समता पर आधारित भारतीय समाजक्रांति का सपना देखनेवाला और इस सपने को साकार करने के लिए अपना पूरा जीवन देनेवाला यह व्यक्ति प्रगतिशील विचारों का प्रेरक था। जोतिराव फुले ने अपने लेखन के द्वारा बहुजन समाज के उद्धार के लिए

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 203
2. वही, पृष्ठ - 379

उसके हीत के लिए अपने प्रयास शुरू किए। निम्नवर्ग, दलित, स्त्री आदि जनता ही देश के विकास के प्रथम कार्यकारी होते हैं यह फुले का मानना था। इन सभी के विकास पर ही देश का भविष्य निर्धारित है यह बात वे मानते।

अपने इस प्रकार के प्रगतिशील विचारों की प्रेरणा लेकर ही फुले ने स्त्री शिक्षा की ओर अपना पहला कदम उठाया। तत्कालीन रुढ़िवादी समाज में इसके विरोध में उन्हे कड़ा संघर्ष भी करना पडा। स्त्री शिक्षा, उसकी उन्नति, उसके अधिकार आदि के प्रति जोतिराव के विचार अत्यंत उच्च थे। समाज का होनेवाला संघर्ष जोतिराव फुले सहन करते। उनका मानना था - "आता शाळा बंद पडू देऊन चालणार नाही. पोटासाठी कामधंदा केला पाहिजे, हे खरंच आहे. पण तो असा पाहिजे, की तो संभाळून हे काम करता आलं पाहिजे. नद्या-नाले, पशुपक्षी आपल्या परीन जगाच्या कल्याणासाठी उपयोगी पडत असताना आपण मात्र स्वत: पुरतं जगावं, यात श्रेय वाटत नाही. मित्रांची, इतर बऱ्याच जणांची मदत मिळते आहे. परंतु तूर्त काही दिवस शिक्षकाचं काम मलाच केलं पाहिजे... अडचणी तर अनेक आहेत."[1] (अब स्कूल बंद करके नहीं चलेगा। पेट के लिए कुछ कामधंधा करना चाहिए, यह सच है। लेकिन वह भी इस तरह का हो कि, उसे सँभालकर यह काम भी करने में सुविधा हो। नदियाँ-नालों, पशुपंछी सब अपने अपने हिसाब से इस दुनिया के हीत के लिए काम में आ रहें हैं ऐसे में हम सिर्फ अपने लिए जिए, इसमें कुछ श्रेय नहीं है। दोस्तों की, बाकी लोगों की मदद हो रही है। लेकिन अब इस वक्त तो अध्यापक का काम मुझे करना ही चाहिए ... कठिनाइयों तो बहुत-सी है।)

कहना सही होगा कि हर काम में महात्मा फुले का दृष्टिकोण सकारात्मक था। आनेवाले हर मुसीबत का मुकाबला करने की पूरी आकांक्षा और सभी में प्रगतिवादी विचार ही थे।

3.2.8 राष्ट्राभिमानी, कुशल नेता :-

जोतिराव फुले बचपन से राष्ट्र के प्रति गहरा अभिमान रखते थे। राष्ट्र के स्वाधीनता के साथ-साथ व्यक्ति के स्वाधीनता को भी अत्यंत आवश्यक मानते थे। प्रांत,

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 48

देश, भाषा, वंश इन सभी सरहदों के बाद का विश्वमानव जोतिराव को अत्यंत प्रिय था। देशाभिमान की उनकी संकल्पना अलग थी। वे कहते, "तो आम्ही जरुर बाळगतो. परंतु आमची देशाभिमानाची कल्पना वेगळी आहे. जे लोक गाईचं मलमूत्र पवित्र मानून प्राशन करतात आणि माणसाचा हातचं स्वच्छ पाणी अपवित्र मानतात, त्यांना पशूंपेक्षाही हीन वागवतात, त्यांचा देशाभिमान मला अपवित्र देशाभिमान वाटतो. आपल्या देशातल्या प्रत्येक माणसांच्या हितासाठी झटणारा माणूसच खरा देशाभिमानी म्हणता येईल. आपल्या भट विद्वानांनी भरवून दिलेल्या देशाभिमानाच्या खुळ्या समजुती डोक्यातून काढून टाका. खऱ्या देशाभिमानाशी त्यांचा काही एक संबंध नाही."[1] (वह हम जरुर स्वीकारते हैं। लेकिन हमारी देशाभिमान की कल्पना इससे अलग है। जो लोग गाय के मलमूत्र को पवित्र मानकर उसका प्राशन करते है और मनुष्य के हाथ का स्वच्छ पानी अपवित्र, उन्हें पशु से भी गया गुजरा मानते हैं, उनके देशाभिमान की भावना मुझे अपवित्र लगती है। हमारे देश के हर एक व्यक्ति के हीत की दृष्टि से प्रयास करनेवाला इन्सान ही सच में देशाभिमानी हो सकता हैं। हमारे पंडित-विद्वानों ने देशाभिमान की जो पगली बातें हमारे दिमाग में भर दी है उन्हें निकालना होंगा। सच्चे देशाभिमानी का उससे कुछ भी संबंध नहीं है।)

जोतिराव फुले एक कुशल नेता भी थे। जब वे नगरपिता बने तो सबसे पहले उन्होंने शहर की गलियों में फैले शराब के अड्डों को बंद करवा दिया। जो-जो अनैतिक व्यवहार चल रहें थे उन्हें बंद करवा दिया। सब्जी मंडई का सवाल उन्होंने मिटा दिया। वे एक कुशल नेता के रूप में दिखाई देते है।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि महात्मा जोतिराव फुले के व्यक्तित्व के विविध पहलू उपन्यास में दिखाई देते हैं। एक समाजसुधारक, एक कुशल नेता, एक लेखक, कवि, एक विचारवंत, एक श्रेष्ठ पति आदि विविध विशेषताएँ उनके व्यक्तित्व में समायी हुई हैं।

3.3 विवेच्य उपन्यासों के प्रधानचरित्र : तुलनात्मक मूल्यांकन :-

तुलनात्मक मूल्यांकन के अंदर विषय के दोनों पहलुओं पर दृष्टि डाली

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 13

जाती है। विवेच्य उपन्यासों के प्रधान चरित्र 'भिखारी ठाकुर' और 'महात्मा जोतिराव फुले' दोनों का उद्देश्य विशिष्ट व्चिार को यहाँ अभिव्यक्त करता है। यथास्थिति वादी व्यवस्था में दोनों ने परिवर्तन की आकांक्षा की। इस लिए दोनों का विवेचन-विश्लेषण, समानताएँ और विषमताएँ आदि पर नजर ड़ालना महत्त्वपूर्ण है।

प्रथम इन दो प्रधान चरित्रों की समानताओं को यहाँ देखेंगे -

3.3.1 साम्य :-

1. 'सूत्रधार' के भिखारी ठाकुर और 'महात्मा' के महात्मा जोतिराव फुले दोनों ऐसे चरित्र हैं जिन्होंने अपना पूरा जीवन समजकार्य के लिए व्यतीत किया। भिखारी ठाकुर ने एक लोक कलाकार के रूप में तो महात्मा जोतिराव फुले ने अध्यापक तथा समाज सुधारक के रूप में समाज जागृति का कार्य किया।
2. भिखारी ठाकुर तथा जोतिराव फुले दोनों निम्न जाति से संबंधित थे।
3. दोनों प्रधान चरित्र सामाजिक परिवर्तन के साथ समता के लिए प्रयत्नशील थे।
4. दोनों प्रधान चरित्रों के विचार आदर्श एवं प्रगतिशीलता से प्रेरित थे।
5. भिखारी ठाकुर तथा महात्मा जोतिराव फुले एक साथ संवेदनशील कवि तथा लेखक थे।
6. दोनों चरित्रों के व्यक्तित्व स्वाभिमानी एवं राष्ट्राभिमानी थे।
7. दोनों चरित्र आजीवन अपने कार्य में तत्पर थे।
8. भिखारी ठाकुर और जोतिराव फुले ने अन्याय, अत्याचार, शोषण के विरोध में अपनी आवाज उठायी।
9. दोनों चरित्र दलित तथा स्त्री के उद्धार के लिए प्रयत्नशील थे। दोनों ने स्त्री का आदर किया।
10. अपने इस समाज जागृति के कार्य में दोनों को तथाकथित समाज का विरोध सहन करना पड़ा लेकिन फिर भी दोनों ने अपना कार्य जारी रखा।

11. दोनों चरित्र अधिकार की लडाई लड़नेवाले थे।

12. दोनों प्रधान-चरित्र यहाँ पर 'महात्मा' के रूप में व्यक्त होता है।

समानताओं के बाद यहाँ इन दो प्रधान चरित्रों के चरित्र की विषमताओं का विवेचन प्रस्तुत है -

3.3.2 वैषम्य :-

1. 'सूत्रधार' के भिखारी ठाकुर अनपढ़ थे। उन पर समाज की स्थितियों का प्रभाव था। महात्मा फुले शिक्षित थे। उनपर टॉमस पेन, शिवाजी महाराज, अब्राहमन लिंकन आदि के विचारों का प्रभाव था।
2. भिखारी ठाकुर एक लोक कलाकार थे उन्होंने अपने प्रदर्शन के द्वारा समाज जागृति का कार्य किया। तो महात्मा फुले एक अध्यापक थे और उन्होंने कृति के द्वारा समाज जागृति की।
3. भिखारी ठाकुर ने जहाँ अपना कार्य कुतुबपुर, भोजपुर के पिछड़े इलाखे में किया। वहीं, महात्मा फुले ने 'पुणे' जैसे सनातनी विचारोंवाले और तथाकथित बौद्धिक समझे जानेवाले समाज में किया।
4. भिखारी ठाकुर लोक कलाकार, लोकसंस्कृति के समर्थक थे। वहीं महात्मा फुले ने परंपरागत सड़ी-गली रुढियों का विरोध तीव्र वक्तव्य और साहित्य के द्वारा किया।

निष्कर्ष :-

निष्कर्षत: प्रस्तुत विषय के अंतर्गत दो अलग-अलग भाषाओं के दो उपन्यासों के प्रधान चरित्रों का तुलनात्मक मूल्यांकन किया। इसमें दोनों प्रधान पात्रों के व्यक्तित्व का तुलनात्मक मूल्यांकन, समानताएँ एवं विषमताएँ प्रस्तुत की।

तुलना में सिर्फ समानता या विषमता ही नहीं देखी जाती तो दोनों दृष्टियों पर तटस्थता से अंकन किया जाता है। समानता की दृष्टि से दोनों पात्रों में अधिक साम्य दिखाई देता है। दोनों प्रधान चरित्र समाजसुधारक के रूप में प्रस्तुत होते हैं। परंपरागत

सामाजिक व्यवस्था के परिवर्तन की आकांक्षा कर समाज को एक स्वस्थ दृष्टि देने की दोनों की चाह थी। दोनों के विचार आदर्श एवं प्रगतिशील थे। दोनों संवदेनशील कवि के रूप में प्रकट होते हैं। दलित, पीड़ित, शोषित जनों के उद्धार के लिए दोनों ने प्रयास किए। अपने इस कार्य में दोनों को कड़ा संघर्ष भी करना पड़ा लेकिन अपने इस संघर्ष में वे कभी पीछे नहीं हठे। व्यक्ति के अधिकार के प्रति दोनों के विचार समान थे। स्त्री स्वतंत्रता की बात दोनों को मान्य थी। इस प्रकार दोनों की समानताएँ अधिक हैं।

विषमता की दृष्टि से दोनों चरित्रों का परिवेश पूरी तरह से अलग है और दोनों चरित्रों के कालावधि में भी काफी अंतर है। दोनों प्रधान चरित्रों के समय की सामाजिक स्थिति में भी अंतर है। भिखारी ठाकुर एक लोक कलाकार होने कारण उन्होंने अपने नाच प्रदर्शन के द्वारा अपना संदेश लोगोंतक पहुँचाया वहीं महात्मा फुले शिक्षक होने के कारण अपने अध्यापन के द्वारा उन्होंने अपना संदेश लोगों तक पहुँचाया।

* * * *